Review Of Research
ISSN: 2249-894X Impact Factor : 3.8014(UIF) Volume - 6 | Issue - 3 | December – 2016

बिहार के गरीबी उन्मूलन में स्वयं सहायता समूह एवं लघुवित्त संस्थाओं की भूमिकाः आलोचनात्मक अध्ययन

वसंत कुमार मंडल
बी. कॉम., एम. कॉम.
शोध छात्र (वाणिज्य) ल. ना. मि. वि. वि, दरभंगा
मु.–उर्दू बाजार, पो.–लालबाग, थाना–लहेरियासराय, जिला–दरभंगा.

सार
किसी भी समाज में महिलाओं की सम्मानजनक स्थिति के अभाव मतें महिलाओं के सम्पूर्ण विकास की अवधारणा निरर्थक है। सभी विकासशील देश महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़ने हेतु प्रयत्नशील है। भारत वर्ष में भी महिलाओं के विकास के लिए उत्तरोत्तर प्रयास किए जा रहे हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में एक तिहाई श्रमशक्ति महिलाओं की है किन्तु उनके कार्यों का मूल्यांकन कम आंका जाता है। उन्हें आज भी आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध नहीं है। जातिगत गरीबी के साथ–साथ लैंगिक गरीबी भी भारतीय महिलाओं की प्रस्थिति को और निम्न बनाती है। प्रत्येक क्षेत्र में 80 प्रतिशत भागीदारी होने के बावजूद भी उन्हें समाज व परिवार में उचित स्थान नहीं मिलता और उनका स्थान गौण होता है। यह भी स्पष्ट है कि जो परिवार जितना

गरीब होगा उसमें महिला की कार्य सहभागिता उतनी ही अधिक होगी अर्थात् गरीबी व महिला का सह–संबंध है जो यह दर्शाता है कि निर्धनतम परिवारों में महिलाओं को ज्यादा कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।

भूमिका

संसाधनों व सुविधाओं के उपभोग में भी उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय होती है। पुरूषों से ज्यादा कार्य करने के बावजूद भी उनकी स्थिति अत्यंत भयावह होती है। पुरूष प्रधान समाज में शिक्षा व कौशल की दृष्टि से भी महिलाएं अत्यंत पिछड़ी होती है। जबकि पहले चौसठ बरसों से देश में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से गरीबी उन्मूलन व विकास के कार्यक्रम चलाए गए हैं, क्योंकि यह भी सत्य है कि विकास में निर्धनों की सहभागिता से ही सामाजिक परिवर्तन संभव है। विकास की प्रक्रिया में आमजन की भागीदारी के महत्व को ध्यान में रखते हुए विकास एवं लघु ऋण की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाने लगी, जिसके कारण भारत सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में सहकारी समितियां बनायी गयी।

साहित्य पुनरावलोकन :

गरीबी उन्मूलन व महिला विकास के लिए भारत में ऋण संस्थाओं का एक लंबा इतिहास रहा है। सुप्रीया, ग्रीकीपती (2008)[2] ने अपने अध्ययन में बताया है कि 1904 में सहकार ग्रीमण ऋण का एक प्रमुख माध्यम था। इसी समय सहकारी बैंक अस्तित्व में आये, जो ग्रामीण वित्तीय व्यवस्था का महत्वपूर्ण साधन था। किंतु ये संथाएँ बढ़ती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं थी।

उदया कुमार, एम.ए. (2008)[3] के अनुसार 60 के दशक में हरित क्रांति के कारण ऋण की मांग में तेजी से वृद्धि हुई। 1969 में 14 बैंको के राष्ट्रीयकरण के बाद बैंको का तीव्रता से विकास व विस्तार हुआ, जिसमें ग्रामीण शाखाएं भी खोली गयी इसी समय अनुदान की अवधारणा अस्तित्व में आयी। 1970 में ग्रामीण वित्तीय व्यवस्था भी लागू की गयी। 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना हुई। 1982 में ग्रामीण विकास में तीव्रता आ सके इसके लिए राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास

बैंक व सहकारी बैंक की स्थापना की गयी है।

श्री रमण, (2008)[4] के अनुसार नावार्ड जो आर.आर.बी का परिष्कृत रूप था, के द्वारा पुरानी व्यवस्था को ठीक कर बेहतर वित्तीय व्यवस्था की नींव रखी गयी जिसमें पूर्व की वित्तीय कमजोरियों को दूर किया गया 1980–90 के बीच ऋण वसूली दर 50–60 प्रतिशत रही है। बैंको के राष्ट्रीयकरण के बाद बैंको का तीव्रता से विकास व विस्तार हुआ। भारत में इस समय ग्रामीण व अर्धशहरी क्षेत्रों में कुल मिलाकर 30 हजार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की 14 हजार जिला सहकारी बैंकों की 12 हजार शाखाएं कुल 1,25,000 व्यावसायिक वाणिज्यिक, ग्रामीण सहकारी बैंकों के अलावा, 1,12,000 प्राथमिक कृषि साख समितियां कार्यरत है। जिसमें 66,000 कार्यशील तथा शेष को निष्क्रिय बताया गया है।

प्राइस वटर हाउस रिर्पोट (1995)[5] ने अपने अध्ययन में पाया कि भारत में वित्तीय व्यवस्थाओं व बैकिंग प्रणाली का विस्तार असमान व गरीबों की पहुंच से दूर रहा। बैकिंग प्रणाली की जटिलता, स्थान की दूरी, गरीबी व सरकारी संस्थाओं के बीच सांस्कृतिक अंतर, बैंक के कम कार्य घण्टे राजनैतिक हस्तक्षेप, अवैज्ञानिक ऋण नीति, के कारण यह आम व्यक्तियों की पहुंच से दूर रहा। गरीबों के ऋण की जरूरतों के बारे में अनुमान है कि लगभग 50,000 करोड़ रूपए की प्रतिवर्ष जरूरत है इसके विपरीत बैंको से गरीबों को लगभग 5000 करोड़ रूपए अर्थात् कुल मांग का केवल 10 प्रतिशत ही कर्ज दिया जाता है। आज भी बैंकिग प्रणाल आधी से ज्यादा ग्रामीण आबादी की पहुंच से बाहर है।

मायर एंड नागारंजन (2000)[6] बैंकिग व वित्तीय संरचनाओं के समकक्ष 1952 में सामुदायिक विकास आंदोलन प्रारंभ हुआ जो ग्रामीण विकास पर आधारित था। राष्ट्रीय विस्तार सेवाएं 1953 में प्रारम्भ हुई ये भी ग्रामीण विकास पर आधारित थी एस्मल एंड मारजीनल फारम्श डेवलपमेंट एंड ऐजेंसी (एसएफडीए) कृषक विकास संस्था की स्थापना 1968–69 में हुई जो गरीबी उन्मूलन के लिए लक्षित योजना थी इसी समय अनुदान की अवधारणा अस्तित्व में आयी।

बिहार में गरीबी उन्मूलन के अवरोधक

एशियन विकास बैंक (एडीबी) का एक अध्ययन बताता है कि विकास के बावजूद पिछले दशक में गरीबी में कमी नहीं आई, जिसे आज भी एशिया गरीबों का घर कहा जाता है। अगर प्रतिदिन 1 डॉलर को गरीबी का पैमाना मान लिया जाए तो एक अनुमान में मुताबिक 690 लाख करीब इस क्षेत्र में रहते हैं। यह 138 लाख परिवारों को गरीब ना देता है। यदि ? डॉलर प्रतिदिन के प्रतिमान को मान लिया जाए तो लगभग 1.9 करोड़ लोग और 380 लाख परिवार गरीबी रेखा के नीचे आ जाएंगे। आर्थिक प्रगति के साथ–साथ वित्तीय संस्थाओं की भी तेजी से प्रगति हुई है। लेकिन एक कठोर सत्य यह भी है कि एशिया में 200 लाख से अधिक गरीब और अल्प आय वाले परिवार है जो प्रचलित फडिंग एजेंसियों से वित्तीय सेवाएं प्राप्त करने में असफल है। इसलिये इन गरीबों की उन्मुक्ति के लिये लघुवित्त एक बेहतर और प्रभावी उपकरण हो सकता है।

लघुवित्त ग्रामीण, अर्धशहरी और शहरी क्षेत्रों में गरीबों के लिये बचत, ऋण तथा अन्य वित्तीय सेवाओं और छोटी राशि के वित्तीय उत्पादों की व्यवस्था/उपलब्धता के रूप में परिभाषित किया गया है ताकि गरीब अपनी आय बढ़ाकर अपना जीवनस्तर सुधार सके। दूसरे शब्दों में कहें तो लघुवित्त का संबंध सामान्य तौर पर छाटे स्तर की वित्तीय सेवाओं (मुख्यतः ऋण और बचत संबंधी) से है जो उन व्यक्तियों को उपलब्ध कराई जाती है जो खेती, मत्स्यपालन या पशुपालन का काम करते हैं या जो छोटे उद्यम चलाते हैं जहाँ पर वस्तुओं के उत्पादन, मरम्मत, उनकी रिसाइकिलिंग या बिक्री का काम किया जाता है। ये सेवां उन व्यक्तियों को भी उपलब्ध कराई जाती है जो विकासशील देशों में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्थानीय स्तर पर स्वयं सेवाएं प्रदान करते हैं, मजदूरी या कमीशन के लिये काम करते हैं, जमीन के छोटे भाग, सूखे के समय उपयोगी मवेशी मशीनरी और औजार अन्य व्यक्तियों और समूहों को किराए पर देकर आमदनी करते हैं। इस प्रकार लघुवित्त (जिसमें अन्य वित्तीय सेवाएं जैसे ऋण, बचत, बीमा और विप्रेषण इत्यादि भी शामिल हैं) गरीबों या ऐसे अत्यंत गरीबों के लिये ऋण की व्यवस्था करने से संबंधित हैं या औपचारिक वित्तीय संस्थाओं द्वारा उपलब्ध कराए जा रहे ऋण सुविधा का लाभ उठाने में अक्षण रहे हैं।

लघुवित्त के संबंध में दो सबसे महत्वपूर्ण विचारधाराएं हैं। इनमें से एक है गरीबी के आधार पर ऋण प्रदान करना जिसे बांग्लादेश के 'ग्रामीण बैंक' ने अपनाया है और दूसरा है वाणिज्यिक वित्त संबंधी विचारधारा जिसे बैंक रक्यात इंडोनेशिया ने अपनाया। बांग्लादेश का ग्रामीण बैंक संपत्तिहीन और ऐसे अत्यंत गरीबों को

4,000 रूपये से कम के ऋण प्रदान करता है जो प्रत्यक्ष रूप से संपार्श्विक प्रतिभूति या जमानत देने की स्थिति में तो नहीं होते लेकिन सामाजिक प्रतिभूति या जमानत देने की स्थिति में जरूर होते हैं। ग्रामीण बैंक समूह/समुदाय के सभी सदस्यों की सुयक्त जिम्मेदारी के आधार पर उन्हें ऋण देता है और ऋणों की वसूली सुनिश्चित करने के लिये सामूहिक दबाव का इस्तेमाल करता है। हालांकि इंडोनेशिया का बैंक रक्तयात इससे विपरीत कार्य करता है। उसकी सोच यह है कि लघुवित्त का प्राथमिक लक्ष्य फाइनेंसियल डीपिंग है, अर्थात गरीबों के लिये अलग स्थायी वित्तीय मध्यस्थता वाली व्यवस्था का निर्माण करना है।[6] इस विवाद को छोड़ दिया जाए तो आज लघुवित्त एक विश्वव्यापी अभियान का रूप ले चुका है। इसकी शुरूआत 1970 के दशक से मानी जाती है जिसे केन्द्र में दो प्रमुख बिंदु थे :

- क्या गरीब लोग अपना ऋण चुकता करने की क्षमता रखते हैं ?
- क्या बिना सब्सिडी के गरीब लोगों को बाजार आधारित उद्यम के माध्यम से वित्तीय सेवाएं मुहैया करा पाना संभव है ?

इस दिशा में तीन वृहत स्तर की पहले देखने को मिलती है, एक है – एशियन एंड पैसिफिक रीजनल एग्रीकल्चरल क्रेडिट एसोसिएशन (एप्राका) कार्यक्रम और एशियन डेवलपमेंट बैंक (एडीबी) द्वारा किए गए प्रयास और संसल्टेटिव ग्रुप टू एसिस्ट द पुअर (सीजीएपी) एप्राका केंद्रीय बैंकों, ग्रामीण विकास बैंकों और ग्रामीण वाणिज्यक बैंको का एक संगठन है जिसकी स्थापना 1977 में इस अपेक्षा से की गई कि वह कृषि ऋण की ओर विशेष ध्यान देगा। बाद में इसका दायरा और अधिक विस्तृत कर इसमें ग्रामीण वित्त को भी शामिल कर लिया गया। चीन के नानजिंग शहर में मई 1986 में आयोजित एक कार्यशाला में इसके सदस्य देशों ने एक नये कार्यक्रम की शुरूआत को मंजूरी दी जिसके अनुसार अपेक्षाकृत अधिक गरीब वर्ग को औपचारिक वित्तीय संस्थाओं से जोड़कर उन्हें ऋण उपलब्ध कराने की सुविधा प्रदान किए जाने की योजना बनाई जानी थी। इसके अंतर्गत एक ऐसी वित्तीय प्रणाली बनाई जानी थी जिसके अनुसार स्वयं सहायता समूह निचली स्तर पर बैंकों और ग्रामीण लघुउच्च उद्यमियों के बीच मध्यस्थ के रूप में काम करें।

लघुवित्त का महत्व

लघुवित्त शब्दावली वित्तीय सेवाओं की उस विशेष उपशाखा की ओर संकेत करती है जो अति गरीब लोगों को छोटे–छोटे कर्ज मुहैया कराती है, प्रायः बिना कोई चीज गिरवी रखे। यह कर्ज व्यक्तिगत उपभोग, उत्पादक गतिविधियों या फिर छोटे–छोटे व्यापार के लिये भी हो सकता है। हाल के दिनों में बचत, लघु बीमा आदि जैसी कर्ज से परे वित्तीय सेवाओं को भी लघुवित्त के दायरे में शामिल किया जाने लगा है। लघुवित्त की विशेषता यह है कि वित्तीय सेवा का आकार बहुत छोटा होता है अर्थात् कर्ज की रकम छोटी होती है और जो लोग ये सेवाएं प्राप्त करते हैं, वे गरीब या अति गरीब होते हैं।

लघुवित्त का महत्व इस तथ्य में निहित है कि औपचारिक/संस्थागत बैंकिंग क्षेत्र ने गरीबों की वित्तीय आवश्यकता को पूरा करने की अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को ठीक से नहीं निभाया है। गरीबों में शिक्षा और जागरूकता की कमी और यह सब इसके बावजूद कि भारत में इस समय ग्रामीण और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में कुल मिलाकर करीब 30 हजार क्षेत्रीय बैंकों कि 14 हजार तथा जिला बैंकिंग ढ़ांचा मौजूद है। इसके अलावा, ग्रामीण स्तर पर करीब 1,12,000 प्राथमिक कृषि साख समितियां कार्यरत हैं। इनमें से 66,000 कार्यशील और बांकी निष्क्रिय बताई जाती हैं। गरीबों को कर्ज की जरूरत के बारे में अनुमान लगाया गया है कि यह राशि 50,000 करोड़ रूपये प्रतिवर्ष के लगभग होगी। इस आवश्यकता के विपरीत गरीबों को बैंकों से कुल 5,000 करोड़ रूपये अर्थात् कुल मांग का केवल 10 प्रतिशत ही कर्ज दिया गया है। सहकारी क्षेत्र को गरीबों को ऋण मुहैया कराने का महत्वपूर्ण दायित्व सौंपा गया था। परंतु उसकी ऋण संरचना की असफलता ने बड़ी संख्या में गरीबों को कर्ज के जाल में फंसा दिया है, क्योंकि उन्हें मजबूरन साहूकारों से अपनी जरूरतों के लिये कर्ज लेना पड़ा। लघुवित्त इसलिये भी बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि पैसा मिलने पर गरीब खुद का रोजगार शुरू कर सकते हैं और मजदूरी पर उनकी निर्भरता कम हो जाती है।

लघुवित्त सम्बन्धी इन तथ्यों के आलोक में प्रस्तुत शोधकार्य का प्रमुख उद्देश्य लघुवित्त की वैश्विक परिप्रेक्ष्य में उभरती प्रवृत्तियों का मूल्यांकन, विश्लेषण तथा परीक्षण करना है तथा भारत में इसकी व्यापकता, व्यावहारिकता एवं उपदेयता सम्बन्धी उपायों को खोजना है। अभी तक इस नवीन विषय पर कोई भी शोध कार्य नहीं किये गये है। अतः इस कार्य के द्वारा इस कमी को पूरा किया जायेगा। जो शिक्षकों, छात्रों शोधकर्ताओं, नीति निर्माताओं तथा इस प्रसंग में अभिरूचि रखने वालों के लिए प्रासंगिक एवं लाभप्रद सिद्ध होगा।

परिकल्पनाएँ :–

1. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में लघुवित्त की उभरती प्रवृत्तियाँ गरीबी निवारण में सहयोगी है।
2. लघुवित्त से गरीबों का जीवन स्तर सुधारा जा सकता है।
3. बिहार में लघुवित्त के द्वारा गरीबों की आय में वृद्धि हुई है।
4. उचित एवं उपयुक्त प्रबन्धन के द्वारा लघुवित्त को लाभदायक बनाया जा सकता है।
5. लघुवित्त को व्यापक बनाने हेतु उपयुक्त प्रबन्धन आवश्यक है।

अध्ययन पद्धति :–

प्रस्तुत शोध कार्य को संपादित करने के लिए विश्लेषनात्मक अध्ययन पद्धति का सहारा लिया जाएगा। इसके अन्तर्गत विभिनन माध्यम से प्राप्त तथ्यों, सरकार द्वारा प्रकाशित प्रतिवेदनों, सरकार द्वारा निर्धारित विभिन्न नीतियों, रिजर्व बैंक का बुलेटिन, तत्संबंधी अन्य प्रकाशित साहित्य, पत्र–पत्रिकायें, संसद की कार्यवाही, कार्य योजना आदि का अवलोकन किया जाएगा। अध्ययन की विश्वसनीयता, उद्देश्य एवं परिकल्पनाओं के सत्यापन के लिए द्वितीय स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का सहारा लिया जायेगा।

अध्ययन का महत्वः

लघुवित्त को पूरी तरह से संपाषणीय बनाया जा सकता है। यदि मॉडल सही है तो लघुवित्त का विकास भी तेजी से होगा। विश्वभर में पिछले दशक दशक के दौरान लघुवित्त संस्थाओं ने 13 से 15 प्रतिशत तक विकास किया है। निश्चय ही, उतना नहीं जितना कि मोबाईल फोन ग्राहकों ने, जिनकी संख्या में 1999 से 2004 के बीच 60 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसके बावजूद, भारत की दो–तिहाई जनसंख्या के पास प्राथमिक बैंक खाता तक नहीं है। जैसा कि सेवा सहकारी बैंक का मेरा अनुभव बताता है, कि बैंक खाता वह प्रवेश बिन्दु है जो सशक्तीकरण प्रक्रिया के प्रारंभ होने के बाद किसी व्यक्ति/महिला को अपना पैसा घर से बाहर रखने की अनुमति देता है।[8]

इस तथ्य ने सरकार का ध्यान खींचा है। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं, दानदाताओं, सामाजिक निवेशकों, मुख्यधारा के बैंकरों और यहाँ तक कि राजा महाराजाओं और प्रसिद्ध हस्तियों का ध्यान भी इस ओर गया है। जोश तो ठीक है, पर क्या इसमें इतना दम है कि इसमें और इजाफा होगा, गिरावट तो नहीं आएगी ?

समावेशी वित्तीय व्यवस्था के कारक काफी जटिल हैं और उनके बारे में भविष्यवाणी करना कठिन है। तथापि, निश्चित रूप से अगले कुछ वर्षों में बैंकों और लघुवित्त संस्थाओं का ग्राहक आधार बदलेगा। कम आयु में ही लोग वित्तीय सेवाओं की मांग करने लगेंगे। हमारी आधी से अधिक जनसंख्या बच्चों की या किशोरों की है जो भविष्य में हमारे ग्राहक बनेंगे। दूसरे, शहरी ग्राहक अधिक होंगे। वर्ष 2009 तक, हमारे देश में शहरों में रहने वालों की संख्या अधिक होगी। तीसरे, संचार प्रौद्योगिकी के कारण ये युवा ग्राहकों का संपर्क व्यापक होगा और उनको जानकारी भी काफी होगी। इसका अर्थ यह भी है कि वे बाहरी ताकतों, ब्रांडिंग आदि से ज्यादा आसानी से प्रभावित हो सकते हैं। परंतु युवाओं की बेरोजगारी एक समस्या है जो आगे और भी गंभीर हो सकती है। युवावर्ग आय के नये–नये तरीके अपनाएंगे। क्या स्वरोजगार उन्हें अधिक आकर्षित करेगा या फिर नहीं ? ये युवा ग्राहक पहली बार उद्यमी बनेंगे, खासकर वे लोग जो ग्रामीण क्षेत्रों से आते हैं। इसके अलावा, हम अभी यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि लघुवित्त में सरकार की भागीदारी बढ़ेगी या नहीं।

यह सब निर्भर करेगा कि मुख्यधारा के वित्तीय क्षेत्र में क्या होता है। अकेले लघुवित्त संस्थाओं में क्या होता है, इससे स्पष्ट नहीं होगा। जब भी अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजार आगे बढ़ेंगे या अन्य दिशाओं में फैलेंगे, गरीब उपभोक्ताओं को लाभ होगा। यदि पहले को छींक आती है तो दूसरे को जुकाम पकड़ेगा। किस प्रकार

सार्वजनिक और निजी अंतरराष्ट्रीय समुदाय आयोग्य लोगों को वित्तीय सेवाएं पहुंचाने में योगदान कर सकता है, यही देखने की बात है, यही चुनौती है।

एशियन विकास बैंक (एडीबी) का एक अध्ययन बताता है कि विकास के बावजूद पिछले दशक में गरीबी में कमी नहीं आई है, जिससे आज भी एशिया गरीबों का घर कहा जाता है। अगर प्रतिदिन डॉलर को गरीबी का पैमाना मान लिया जाए तो एक अनुमान के मुताबिक 690 लाख गरीब इस क्षेत्र में रहते हैं। यह 138 लाख परिवारों को गरीब बना देता है। यदि 2 डॉलर प्रतिदिन के प्रतिमान को मान लिया जाए तो लगभग 1.9 करोड़ लोग और 380 लाख परिवार गरीबी रेखा के नीचे आ जाएंगे। आर्थिक प्रगति के साथ–साथ वित्तीय संस्थाओं की भी तेजी से प्रगति हुई है लेकिन एक कठोर सत्य यह भी है कि एशिया में 200 लाख से अधिक गरीब और अल्प आय वाले परिवार हैं जो प्रचलित फडिंग एजेंसियों से वित्तीय सेवाऐं प्राप्त करने में असफल हैं। इसलिये इन गरीबों की उन्मुक्ति के लिये लद्युवित्त एक बेहतर और प्रभावी उपकरण हो सकता है।[9]

निष्कर्ष :

लघुवित्त का महत्व इस तथ्य में निहित है कि औपचारिक / संस्थागत बैंकिंग क्षेत्र ने गरीबों की वित्तीय आवश्यक्त को पूरा करने की अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को ठीक से नहीं निभाया है। इसके कई कारण हैं, जो गरीबों में शिक्षा और जागरूकता की कमी और यह सब इसके बावजूद कि भारत में इस समय ग्रामीण और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में कुल मिलाकर करीब 30 हजार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की 14 हजार तथा जिला सहकारी बैंकों की 12 हजार शाखाओं से संपन्न विस्तृत बैंकिंग ढ़ांचा मौजूद है। इसके अलावा, ग्रामीण स्तर पर करीब 1,12,000 प्राथमिक कृषि साथ समितियां कार्यरत हैं। इनमें से 66,000 कार्यशील और बांकी निष्क्रिय बताई जाती हैं। गरीबों को कर्ज की जरूरत के बारे में अनुमान लगाया गया है कि यह राशि 50,000 करोड़ रूपये प्रतिवर्ष के लगभग होगी। इस आवश्यकता के विपरीत गरीबों को बैंकों से कुल 5,000 करोड़ रूपये अर्थात् कुल मांग का केवल 10 प्रतिशत ही कर्ज दिया गया है। सहकारी क्षेत्र को गरीबों का ऋण मुहैया कराने का महत्वपूर्ण दायित्व सौंपा गया था। परंतु उसकी ऋण संरचना की असफलता ने बड़ी संख्या में गरीबों को कर्ज के जाल में फंसा दिया है, क्योंकि उन्हें मजबूरन साहूकारों से अपनी जरूरतों के लिये कर्ज लेना पड़ा। लघुवित्त इसलिये भी बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि पैसा मिलने पर गरीब खुद का रोजगार शुरू कर सकते हैं और मजदूरी पर उनकी निर्भरता कम हो जाती हैं।[10]

संदर्भ स्रोत :–

1. Sarma, Dilip (2008) Emerging Self-Help Groups-Instrument for Promoting Micro Credit System, Resource Unit, Rashtriya Gramin Vikas Nigam guwahati, Assam, pp. 43.
2. Garikipati, S. (2008) Redefining gender roles, reworking gender relations : Female agricultural labor in dry regions of AP. pp. 23-24.
3. M.A. Udaykumar (JULY 11-14, 2004) Passive Participation to Elective Leadership : A Study on the Advances in Women Leadership in Dakshin Kannad, India. pp. 143-148.
4. Sriraman V.P. (2006) Micro Finance, Self Help Groups and Women Empowerment - current issues and concerns. pp. 21-22.
5. Price Water House Report (1995) pp. 541-546.
6. Meyer, R.L., & Nagarajan, g. (2000) Rural Financial markets in Asia : Paradigms, policies and performance. Oxford : Oxford University Press. p. 267-274.
6. वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट, 2007, विश्व बैंक, वाशिंगटन, पृ0 – 118
7. दसवीं पंचवर्षीय योजना, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ0 – 251
8. आर्थिक सर्वेक्षण, 2007–2008, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ0 – 472
9. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, बुलेटिन पृ0 – 410
10. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, वार्षिक प्रतिवेदन पृ0 – 315